श्रीगुरु से प्रार्थना

गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा गाई गई

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

आप ही मेरी माता हैं, पिता भी आप हैं,
बन्धु भी आप हैं और मित्र भी आप हैं,
आप ही विद्या हैं और आप ही धन हैं।
आप ही मेरा सर्वस्व हैं। आप ही मेरे देव हैं।

दूर करो दुःख-दर्द सब,
दया करो भगवान।
मन-मन्दिर में उज्ज्वल हो,
तेरा निर्मल ज्ञान॥

जिस घर में हो आरती,
चरणकमल चित लाग।
तहाँ हरि वासा करें,
ज्योत अनन्त जगाय॥

जहाँ भक्त कीर्तन करें,
बहे प्रेम दरियाय।

तहाँ हरि श्रवण करें,
सत्यलोक से आय॥

सब कुछ दिया आपने,
भेंट करूँ क्या नाथ।
नमस्कार की भेंट करूँ,
जोड़ूँ मैं दोनों हाथ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ। वह पूर्ण है। यह पूर्ण है।
पूर्ण से पूर्ण का उद्भव होता है।
पूर्ण में से पूर्ण ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

सद्गुरुनाथ महाराज की जय।

स्वामी शान्तानन्द द्वारा लिखित परिचय

मैंने गुरुमाई चिद्विलासानन्द से सीखा है कि मुझे शक्तिपात मिलने के बाद जो आशीर्वाद व उपहार प्राप्त हुए हैं, उनका स्मरण करने पर मेरे अन्दर सहज ही जो कृतज्ञता उदित होती, उस कृतज्ञताभाव की मैं अभिस्वीकृती व उसका सम्मान करूँ। हर दिन जब मैं श्रीगुरुमाई की कृपा की रूपान्तरणकारी शक्ति का स्मरण करता हूँ; जब मैं उनकी अनमोल सिखावनियों का स्मरण करता हूँ जो मुझे महान सद्गुणों को विकसित करने और इस बात पर दृढ़ विश्वास रखने हेतु प्रेरित करती हैं कि भगवान, श्रीगुरु और मेरी

आत्मा, एक ही प्रकाश हैं; जब मैं उनके अहैतुक प्रेम का और अपनी अन्तर-यात्रा के हर क़दम पर मेरा मार्गदर्शन करने वाले उनके चिरस्थायी संरक्षण का स्मरण करता हूँ, तब मैं पाता हूँ कि पूर्ण आह्लाद से सराबोर होकर मेरा हृदय कह उठता है, "गुरुमाई जी, आपका बारम्बार धन्यवाद! आपका बहुत-बहुत धन्यवाद!" जो हृदय कृतज्ञता से भरा होता है, वह आभार प्रकट करने हेतु श्रीगुरु की स्तुति करने के उपाय ढूँढ़ता है।

परम्परागत तौर पर, सिद्धयोगी अपने श्रीगुरुगीता पाठ के समापन पर कृतज्ञता से पूरित इस प्रार्थना को गाते हैं। इस प्रार्थना की रचना बाबा मुक्तानन्द के एक भक्त, हरि ॐ शरण जी ने १९६० के दशक के अन्तिम वर्षों में की थी। इसकी रचना करने के लिए उन्होंने संस्कृत श्लोकों के साथ हिन्दी भाषा में स्वयंलिखित पदों को जोड़ा था।

यह प्रार्थना 'त्वमेव माता' शब्दों के साथ आरम्भ होती है जिनका अर्थ है, "आप ही मेरी माता हैं।" ये शब्द संस्कृत भाषा के 'पाण्डवगीता' नामक स्तोत्र के एक श्लोक से हैं। पवित्र महाकाव्य 'महाभारत' में महारानी गान्धारी भगवान श्रीकृष्ण को इन शब्दों से सम्बोधित करती हैं। एक शिष्या के रूप में, महारानी अपने श्रीगुरु को परमपिता, सभी का मित्र और विद्या व धन-समृद्धि का स्रोत जानकर श्रद्धा-भक्ति व आदर के साथ उनकी स्तुति करती हैं। सच्ची समझ के साथ, महारानी गान्धारी श्रीगुरु को सभी की आत्मा के रूप में देखती हैं और इसीलिए वे श्रीगुरु को अपने जीवन के हर एक आशीर्वाद का स्रोत मानती हैं।

अगले चार श्लोक हरि ॐ शरण जी द्वारा हिन्दी भाषा में लिखे गए हैं; इनमें भगवान की स्तुति श्रीगुरु के रूप में की गई है, वे जो अन्तर के दुःखों को दूर कर मन को उज्ज्वल बनाते हैं। इन श्लोकों में पूजा, भक्तिपूर्ण प्रेम और दिव्य नाम के संकीर्तन की शक्ति का गुणगान उन उपायों के रूप में किया गया है जिनके द्वारा ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव किया जा सकता है।

इस बात से अवगत कि वह श्रीगुरु का ऋणी है, एक शिष्य मनन-चिन्तन करता है, "सब कुछ दिया आपने, भेंट करूँ क्या नाथ?" इस प्रश्न का उदय अन्तरतम की गहराई में अनुभव होने वाली सराहना व कृतज्ञताभाव से होता है, और इसका जो उत्तर उभरता है, वह है : "नमस्कार की भेंट करूँ, जोड़ूँ मैं दोनों हाथ।" नमस्कार अर्पित करके एक शिष्य भक्तिभाव से श्रीगुरु का पूजन-वन्दन करता है और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। जब एक शिष्य श्रीगुरु से मिलने वाले आशीर्वादों को पहचानकर उनकी अभिस्वीकृति करता है, तब उसके हृदय में जो कृतज्ञता उमड़ती है, वही कृतज्ञताभाव इस पूरी प्रार्थना

में अभिव्यक्त हो रहा है। और इस नमन के मूल में जो भाव स्पन्दित होता है, वह है, श्रीगुरु की आराधना का भाव।

प्रार्थना के बाद, 'बृहदारण्यकोपनिषद्' के एक सुपरिचित श्लोक का पाठ किया जाता है, जो इन शब्दों से आरम्भ होता है 'ॐ पूर्णमदः'। पिछले पाँच श्लोकों में शिष्य ने श्रीगुरु के साक्षात् रूप को सम्बोधित किया है। इस समापन श्लोक में 'पूर्ण' का अर्थात् परमसत्य की 'पूर्णता' व 'सर्वोत्कृष्टता' का आवाहन किया गया है। यह पूर्णता अर्थात् परम आत्मा, श्रीगुरु में, शिष्य में व सृष्टि की हर वस्तु में विद्यमान है।

यह अन्तिम श्लोक, उस मूल बोध का स्मरण कराता है जो एक शिष्य को अपने श्रीगुरु का सम्मान करते समय बनाए रखना चाहिए—अर्थात्, शिष्य को यह बोध बनाए रखना चाहिए कि वह स्वयं और परमात्मा एक ही हैं, और यही हर चीज़ को एक सूत्र में बाँधता है; फिर भले ही वह शिष्य अपने श्रीगुरु का सम्मान पूजा-अर्चना द्वारा या प्रार्थना द्वारा या साधना के अभ्यासों द्वारा कर रहा हो। यही वह बोध है जिसके द्वारा एक शिष्य को अन्तर-शान्ति की प्राप्ति होती है।

© २०२२ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।